Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

श्री वैष्णव सम्प्रदाय में माया का स्वरूप एवं आचार्य शङ्कर के मायावाद का खण्डन

भावना शुक्ला

शोधच्छात्रा

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारतीय चिन्तन परम्परा में दार्शनिक सम्प्रदायों में 'माया' शब्द का अनेकशः उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में माया शब्द का उल्लेख प्राप्त होना इसकी प्राचीनता का द्योतक है।[1] शङ्कराचार्य के द्वारा माय के स्वरूप के प्रतिपादन के अनन्तर तो समस्त भारतीय दार्शनिकों ने माया की चर्चा की है। माया शब्द की निष्पत्ति **मा माने** धातु से हुई है, जिसका अभिप्राय है- नापना अथवा तौलना।[2] किन्तु दार्शनिकों ने जिस माया के स्वरूप का प्रतिपादन किया है, उसके अनुसार माया जीवात्मा एवं परमात्मा के मध्य भूमिका निभाने वाली कोई शक्ति है। आचार्य रामानुज माया और प्रकृति को एक ही शक्ति के दो नाम स्वीकार करते है, जबकि आचार्य शङ्कर ने माया तथा अविद्या का प्रयोग एक ही अर्थ में किया है। उनके अनुसार आत्मा तथा ब्रह्म के समान माया तथा अविद्या में भी तादात्म्य है। वह उस माया को ही अविद्या, अध्यास, अध्यारोप, भ्रम, अव्यक्त, विवर्त, मूलप्रकृति आदि शब्दों से अभिहित करते हैं, जबकि आचार्य रामानुज माया को मिथ्या नहीं स्वीकार

करते हैं। अपितु उसे ईश्वर की शक्ति के रूप में प्रतिपादित करते हैं।[1] यथा - जादूगर किसी औषधि अथवा मन्त्र के माध्यम से मिथ्या वस्तु के विषय में भी लोगों के मध्य 'यह सत्य है' ऐसी बुद्धि उत्पन्न कर देता है। वस्तुतः वहाँ मन्त्र और औषधि आदि ही माया है।[2] अतः उसे मायावी की सञ्ज्ञा दी जाती है। वस्तुतः रामानुज के अनुसार प्रकृति एवं माया दोनों एक ही शक्ति की दो पृथक् –पृथक् सञ्ज्ञाएँ हैं। प्रकृति की विचित्र सर्गशीलता के कारण ही उसे माया की सञ्ज्ञा दी जाती है।[2] यद्यपि आचार्य रामानुज प्रकृति को ही माया की सञ्ज्ञा देते है, फिर भी उनकी प्रकृति सांख्य की प्रकृति से भिन्न है। सांख्य दर्शन में प्रकृति को स्वतन्त्र एवं असीम स्वीकार किया गया है, जबकि आचार्य रामानुज प्रकृति को परतन्त्र एवं ससीम स्वीकार करते हैं क्योंकि वह ईश्वर के आश्रित रहती है। सांख्य दर्शन में प्रकृति स्वयं सृष्टि करने में सक्षम रहती है, जबकि आचार्य रामानुज का मत है कि सृष्टि मात्र ईश्वर के संकल्प से होती है। रामानुज ब्रह्म को इस सृष्टि का निमित्त एवं उपादान कारण स्वीकार करते हैं। माया ही वह शक्ति है, जिससे ईश्वर जगत् की सृष्टि करता है। इसे ही रामानुज दर्शन में ईश्वर की लीला कहते हैं। समस्त विकार अचित् तत्त्व में ईश्वर के संकल्प तथा चेतन के संयोग से ही होते हैं। विकार अचित् अर्थात् प्रकृति का कार्य है। यह परिणामी है और इसी से सृष्टि की उत्पत्ति होती है, किन्तु उत्पादन क्षमता होने के बावजूद प्रकृति स्वतन्त्र नहीं है। वह ईश्वर के अधीन है तथा उसी के द्वारा मर्यादित एवं नियन्त्रित है। रामानुज के अनुसार समस्त विकार ब्रह्म के शरीरभूत चित् और अचित् अंशों में होते है तथा ब्रह्म इनके अन्तर्यामी के रूप में नित्य विकार रहित एवं अपरिणामी ही रहता है। विशिष्टाद्वैतवाद में जीव एवं जगत् ब्रह्म के विशेषण है तथा ब्रह्म विशेष्य होता है। ब्रह्म से इनका पृथक् कथन न हो सकने के कारण चिदचिदवस्तुरूप देह वाले अद्वितीय ब्रह्म ही अपने सत्य संकल्प द्वारा नाम-रूप के विभाग से युक्त स्थूल चिदचिद्वस्तु रूप शरीर के माध्यम से अनेक रूपों में होने के संकल्प से युक्त होकर जगत् के रूप में परिणत हो जाता है।[1] विशिष्टाद्वैतवाद में

मिश्रसत्त्व को ही प्रकृति अथवा माया की सञ्ज्ञा दी जाती है, जो अचित्तत्त्व का ही एक भेद है। यही मूल प्रकृति है। विष्णु पुराण में कहा भी गया है कि प्रकृति जो इस सृष्टि का उत्पत्तिस्थान है, वह अनादि और अनन्त है। कर्म करने वाले जीवों का क्षेत्र भी त्रिगुणात्मक है। वह प्रकृति का रूप कहलाता है। सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन त्रिगुणों की उत्पत्ति प्रकृति से ही होती है। यह प्रकृति अपने रजोगुण एवं तमोगुण के द्वारा बद्ध जीवों के ज्ञान एवं आनन्द को तिरोहित करती है। यहाँ ध्यातव्य है, कि यह नित्य एवं मुक्त जीवों के ज्ञान एवं आनन्द को तिरोहित नहीं कर सकती है। इस सन्दर्भ में श्रीपराशर भट्ट का भी मन्तव्य है कि 'जो नित्य एवं मुक्त जीव हैं, वे श्रीरङ्गधाम में आकर तथा प्राकृत शरीर को धारण करके श्री भगवान् की शोभा को बढ़ाते हैं, यह उनके ज्ञानादि के संकोच का कार्य नहीं करता है।' मुण्डकोपनिषद् में भी प्रतिपादित है, कि 'ईश्वर के साथ एक ही वृक्ष पर निवास करने वाला जीव अपने दीन स्वभाव के कारण मोहित होकर शोक करता है। जिस समय जीव ध्यान के द्वारा अपने से विलक्षण योगिसेविन ईश्वर एवं उसकी महिमा को देखता है, उस समय वह शोक रहित हो जाता है, अर्थात् नियाम्या प्रकृति से मोहित होकर जीव दुःखानुभव करता है। वस्तुतः श्रीभगवान् की अनादि माया से संसारी जीव के स्वरूप का प्रकाश तिरोहित हो जाता है। आगम प्रकरण में इस सन्दर्भ में कहा गया है, कि अनादि माया के द्वारा मोहित जीव इस संसार में सो गया है। जब वह जीव जागता है, तब उसे अज, अनिद्र और स्वप्नरहित अद्वैत आत्मतत्त्व का बोध होता है। यह माया बद्ध जीवों में विपरित ज्ञान का जनक है। यह ब्रह्माण्ड का निर्माता है, अतः इसे जगत् का उपादान कारण भी कहते हैं। इसी के कारण संसारी जीव अनात्म देह को आत्मा समझता है। ईश्वर के अधीन रहने वाली आत्मा को स्वतन्त्र समझता है। वस्तुतः आत्मा तो परमात्मा का शेष है, तथापि अज्ञानतावश वह उसे परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य का शेष समझता है। भगवत्प्राप्ति

ही परम पुरुषार्थ है तथापि ऐश्वर्य की प्राप्ति को ही परम पुरुषार्थ समझना। जिन उपायों से भगवत्प्राप्ति सम्भव नहीं है, उसे भी भगवत्प्राप्ति का उपाय समझना।[3]

माया नित्य है क्योंकि यह उत्पत्ति एवं विनाश से रहित होती है। रामानुजाचार्य के अनुसार प्रकृति और माया दोनों एक ही शक्ति के भिन्न-भिन्न नाम है। प्रकृति की विचित्रसर्गशीलता के कारण हो उसे माया की सञ्ज्ञा दी जाती है। विशिष्टाद्वैतवाद में अद्वैतवादियों की भाँति माया एवं जगत् का मिथ्या नहीं स्वीकार किया जाता है। उनके अनुसार माया ज्ञान का ही पर्याय है- **'माया वायुर्न ज्ञानम्'**।[1] अपनी माया से ही ईश्वर जीवों के शुभाशुभ को जानते हैं। मायारूपी ज्ञान अथवा संकल्प द्वारा ही चिदचिद् पदार्थों से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि होती है। अतः जीव के लिए अत्यन्त दुष्कर है कि वह विविधरूपों में विचित्र सृष्टि का निर्माण करने वाली ईश्वर की माया शक्ति को जान सके। इस सन्दर्भ में रामानुजाचार्य भी कहते हैं, कि माया का कार्य है कि ईश्वर के स्वरूप के छिपा कर जीव की अपने स्वरूप में भोग्य बुद्धि करा देना। अतः ईश्वर की माया से मोहित हुआ, सम्पूर्ण जगत् असीम तथा अतिशय आनन्द स्वरूप ईश्वर को नहीं जान पाता है।[2] आचार्य रामानुज के अनुसार- माया दैवी से माया की निवृत्ति है, अतः यह सभी के लिए दुस्तर है अर्थात् इसे पार करना अत्यन्त कठिन है। चूँकि यह असुर और राक्षसों के अस्त्रादि के सदृश विचित्र कार्यों को सम्पादित करने वाली है, अतः इसको माया की सञ्ज्ञा से अभिहित करते हैं।[1] आचार्य रामानुज प्रतिपादित माया के दो स्वरूप परिलक्षित होते हैं, जिसमें एक तो अद्भुत पदार्थों की विचित्र सृष्टि करने वाली ईश्वरीय शक्ति के रूप में तथा दूसरी, जीव के द्वारा जान सकने में अत्यन्त दुष्कर शक्ति के रूप में। कहने का अभिप्राय यह है, कि माया एक ही है, जो ईश्वर की शक्ति है। ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने के कारण वह ईश्वर उस माया के द्वारा प्रभावित नहीं होता है अपितु वह माया का नियन्ता है, जबकि इसके विपरित वह जीव उसी माया से प्रभावित होता है। उस माया से मोहित होकर जीव सो जाता है।[1] उस

समय वह जीवात्मा उस माया के, ईश्वर के एवं स्वयं के स्वरूप को नहीं जान पाता है। जीवात्मा को यह ज्ञात ही नहीं हो पाता है, कि वह प्रकृति अथवा माया से भिन्न ज्ञान स्वरूप तथा आनन्द स्वरूप है। उसे यह भी विस्मृत हो जाता है, कि वह ईश्वर का अनन्यार्हशेष है। वह ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य का दास नहीं हो सकता है, यहाँ तक कि स्वयं का भी दास नहीं हो सकता है। जीवात्मा के पाप और पुण्य कर्मों के फलस्वरूप जीवात्मा का गर्भ में प्रवेश होता है, जिससे वह जीवात्मा देवता, मनुष्य, तिर्यक, स्थावरादि अनेक योनियों में जन्म लेता है, तथा वह देहात्माभिमान, स्वतन्त्र्य एवं अन्यशेषत्व नामक तीन गर्तों में फँस जाता है। जीव इन गर्तों में फँसकर सप्तविध सांसारिक अवस्थाओं (गर्भवास, जन्म, बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था, मरण एवं नरकवास) को प्राप्त करके अनन्त क्लेश से युक्त होकर इस संसार में अनवरत अपने कर्मों के फलस्वरूप अनेक योनियों में जन्म लेकर दुःखोपभोग करता रहता है।

आचार्य रामानुज ने शङ्कराचार्य प्रतिपादित माया अथवा अविद्या विचार पर का खण्डन किया है। आचार्य शङ्कर ने जगत् के मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिए मायावाद का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार कारण भूत केवल ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता है त था यह कार्यरूप जगत् मिथ्या है, माया है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार मिथ्यात्व वह है; जो सत् और असत् दोनों से ही विलक्षण है।[1] सदसद्विलक्षण वस्तु अनिर्वचनीय है। सत् वह है जो त्रिकालाबाधित है।[2] जिसका बाध भूत वर्तमान तथा भविष्यत् तीनों ही कालों में न किया जा सके। ब्रह्म अथवा आत्मा की ही एकमात्र त्रिकालाबाधित एवं पारमार्थिक सत्ता है। असत् वह है, जिसकी तीनों ही कालों में कोई सत्ता न हो, यथा बन्ध्यापुत्र, शशश्रृंग और

---

1 सदसद्विलक्षणत्वं मिथ्यात्वम् ।

2 त्रिकालावाध्यत्व लक्षणं सत् ।

आकाश-कुसुभ। अद्वैत वेदान्त के अनुसार हम अपनी दिनचर्या में किसी भी ऐसा वस्तु का अनुभव नहीं करते, जिसे हम सत् अथवा असत् को कोटि में बाट सकें। यथा- रज्जु सर्प का अनुभव सदसद्विलक्षण एव अनिवर्चनीय होने से मिथ्या है। रज्जु सर्प का ज्ञान सत् भी नहीं हैं, क्योंकि कालान्तर में हमें यह ज्ञात हो जाता है, कि यह सर्प नहीं रज्जु है। इसे हम असत् भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि प्रतीतिकाल में इसके अनुरूप व्यवहार होता है। इसे यदि हम सद् एवं असत् दोनों ही स्वीकार कर ले तो आत्म विरोध होता है। अथः इसे सदसद्विलक्षण अथवा मिथ्या पर ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता एवं जीव और जगत् प्रपञ्च के मध्य सामञ्जस्थ स्थापित करने का प्रयत्न किया है। इस माया कि दो शक्तियाँ हैं- प्रथम, आवरण शक्ति तथा द्वितीय विक्षेय शक्ति।[3] यहाँ आवरण शक्ति ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा अज्ञान परिच्छिन्न होने पर भी प्रमाता की बुद्धि को ढक लेने के कारण मानो अपरिच्छिन्न और असंसारी आत्मा को देखने वाले के दृष्टिपथ को ढक लेने के कारण मानो अनेक योजनों के विस्तार वाले सूर्यमण्डल को ढक लेता है। तथा विक्षेप शक्ति वह शक्ति है, जो सूक्ष्म शरीर से प्रारम्भऊ करे (स्थूल) ब्रह्माण्डपर्यन्त (समस्य) जगत् की सृष्टि कर देती है।[4] यथा- जिस प्रकार रज्जु विषयक अज्ञान अपने द्वारा ढकी हुई रस्सी में अपनी शक्ति से सर्पादि की उद्भावना कर देता है, उसी प्रकार अज्ञान अपने द्वारा ढकी हुई आत्मा में अपनी विक्षेपशक्ति के द्वारा आकाशादि कार्यसमूह की उद्भावना कर देता है। आवरणशक्ति अभावात्मक है और विक्षेपशक्ति भ्रमात्मक ज्ञानोत्पादिका है। अतः माया भावरूप और अनिर्वाच्य है। माया की आवरण शक्ति के कारण ही किसी वस्तु का यथार्थस्वरूप छिप जाता है। तथा विक्षेप शक्ति

---

3 आवरणशक्तिस्तावदल्पोऽपि मेघोऽनेकयोजनायतमादित्य
मण्डलमवलोकयितृनयनपथपिधायकतया यथाच्छादयतीव,
तथाज्ञानं परिच्छिन्नमप्यात्मानमपरिच्छिन्नमसंसारिणमवलोकयितृ-
बुद्धिपिधायकतयाच्छादयतीव, तादृशं सामर्थ्यम् ।- सदानन्द- (वेदान्तसार)

4 विक्षेपशक्तिर्लिङ्गणदि ब्रह्माण्डान्तं जगत्सृजेत्। (वाक्यासूधा-13)

के ही कारण एक वस्तु दूसरी वस्तु के रूप में प्रतीत होने लगती है। पाया की आवरण शक्ति से एक ही ब्रह्म नाना रूपात्मक भासित होता है। यह नानारूपात्मक जगन्मिथ्या है। जब हमें परमार्थ सत्य के एकत्व का बोध हो जाता है तब अनेकत्व का बोध स्वतः समाप्त हो जाता है। एतद् हमें ज्ञान होता है कि माया की सत्ता व्यवाहारिक है, पारमार्थिक सत्ता नहीं। इसे व्यावहारिक दृष्टि से सत्य एवं पारमार्थिक दृष्टि से असत्य कहा जाता है। माया अनादि है, तथापि इनका अन्त भी सम्भव है। ब्रह्मज्ञान माया का निवर्तक ज्ञान है। माया नामधेयमात्र है।

आचार्य रामानुज ने शङ्कराचार्य के मायावाद पर घोर आपत्ति करते हे, उसका खण्डन किया है। रामानुज शङ्कर के विपरित मायमा (प्रकृति) को ब्रह्म की वास्तविक शक्ति स्वीकार करते है, जिसके द्वारा वह सृष्टि की रचना करता है।[5] इनके अनुसार निर्गुण श्रुतियाँ ब्रह्म को हेयगुणरहित बताया गया है। सगुण श्रुतियाँ ब्रह्म को अशेष कल्याणगुणनिधान कहती है। रामानुज के अनुसार माया ईश्वर की शक्ति है, जो अद्भुत एवं विचित्र पदार्थों की सदृष्टि करती है। रामानुज माया को प्रकृति भी कहते हैं। इस प्रकृति के दो रूप है। शुद्ध सत्व और मिश्रसत्त्व। जब ब्रह्म शुद्ध सत्त्व विद्या से विशिष्ट होता है, तब वह ईश्वर कहलाता है और जब मिश्र सत्त्व से संवलित होता है, विशिष्ट होता है, तब जीव कहलाता है। शङ्कर ब्रह्म को सत्य एवं जगत् को मिथ्या स्वीकार करते है।[6] इसके विपरित रामानुक के अनुसार-यदि इस जगत की सृष्टि करने वाला सत्य है, तो उसकी सृष्टि उस स्रष्टा की ही भाँति भी सत्य है।

रामानुजाचार्य ने शङ्कराचार्य की मायावाद का खण्डन करते हुए इस अविद्यावाद

---

5 श्री भाष्य (1/1/1)

6 ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।

में सात प्रमुख दोषों को गिनाया है। वे सात आक्षेपों के आधार पर शङ्कराचार्य के मायावाद को तर्कतः अनुपपन्न सिद्ध करते हैं, जिन्हें सप्तानुपत्ति कहते हैं। इन्हें अनुपपत्ति कहते हैं, क्योंकि इनके द्वारा माया की उपपत्ति अर्थात् सिद्धि प्रमाणित नहीं की जा सकती है। ये सप्त अनुपपत्ति अग्रलिखित है-

1. आश्रयानुपत्ति - रामानुजाचार्य का आक्षेप है कि माया अथवा अविद्या न तो कोई आश्रय है और न कोई अधिष्ठान है। इसका आश्र)य तर्क की दृष्टि से सिद्ध नहीं किया जा सकता है। तो यहाँ जिज्ञासा होती है कि इस माया का आश्रय क्या है? या तो माया का आश्रय ब्रह्म है अथवा जीव। रामानुज कहते हैं कि ब्रह्म को माया का आश्रय नहीं माना जा सकता है, क्योंकि ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है और माया अज्ञानस्वरूप है। ज्ञान और अज्ञान में सर्वथा विरोध है। अतः ज्ञान-अज्ञान का आश्रय किस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है। और यदि हम माया का आश्रय ब्रह्म को स्वीकार कर ले तो शङ्कराचार्य का अद्वैतवाद खण्डित हो जाता है, क्योंकि हमें ब्रह्म के अतिरिक्त माया का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ेगा। इस माया का आश्रय जीव को भी नहीं स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि जीव स्वयं अविद्या का ही कार्य है। जो कारण है, वह कार्य पर किस प्रकार से आश्रित रह सकता है। इस प्रकार माया का आश्रय न तो ब्रह्म है और नहीं जीव है। यह शङ्कराचार्य की कल्पना मात्र है। इस तर्क को आश्रयानुपपत्ति कहते हैं, क्योंकि यह माया के आश्रय से सम्बन्धित है। रामानुज ने इस तर्क के द्वारा यह बताने का प्रयत्न किया है, कि माया का कोई आश्रय नहीं है।

किन्तु अद्वैत वेदान्तियों ने उपरोक्त रामानुज के आक्षेप को नियधार बताया है। ब्रह्म ही माया अथवा अविद्या का आश्रय है। चूँकि माया एवं जीव दोनों ही अनादि है अतः जीव उसी प्रकार से माया का आश्रय नहीं हो सकता है, जिस प्रकार पौधा बीज का तथा बीज

पौधे का आश्रय हो सकता है। किन्तु शङ्कराचार्य ने यह स्पष्ट किया है कि जीव माया का आश्रय नहीं है। ब्रह्म ही माया का आश्रय है। जिस प्रकार जादूगर अपने ही जाइ से नहीं ठगा जा सकता है तथा रज्जु को सर्प समझ लेने पर रज्जु पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है। उसी प्रकार ब्रह्म भी माया अथवा अविद्या का आश्रय होने पर भी उससे प्रभावित नहीं होता है तथा उससे ब्रह्म की अद्वैतता बाधित नहीं होती है। उस माया का विरोध विद्या से है, चैतन्यस्वरूप ब्रह्म से नहीं। अविद्या का आश्रय होने पर भी वह ब्रह्म शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। अतः ब्रह्म माया के आश्रय है, यह सिद्ध होता है।

तिरोधानुपपत्ति - रामानुज का आक्षेप है कि माया अथवा अविद्या ब्रह्म पर पर्दा किस प्रकार डाल सकती है। माया द्वारा ब्रह्म का तिरोधान तर्कतः असिद्ध है। ब्रह्म चैतन्य स्वरूप एवं स्वयं प्रकाश है। माया तो अज्ञानरूप है। अतः माया उसी प्रकार ब्रह्म का तिरोधान नहीं कर सकती है, जिस प्रकार अन्धकार प्रकाश को नहीं ढक सकता है। यदि माया ब्रह्म का तिरोधान कर सकती है, तो इससे ब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता सर्वथा बाधित हो जाती है। ब्रह्म का स्वयं प्रकाश, शुद्धज्ञान का ही अपर नाम है। चूँकि शुद्ध ज्ञान की मानसिक वृत्ति न होने से उत्पत्ति नहीं हो सकती है अतः शुद्ध ज्ञान का तिरोधान भी असम्भव है। इस तर्क को 'तिरोधानानुपपत्ति' की संज्ञा दी जाती है।

किन्तु शङ्कराचार्य के अनुसार जिस प्रकार मेघ सूर्य को आच्छादित कर देता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी अज्ञान से आच्छादित हो जाता है। वस्तुतः आवरण केवल हमारी दृष्टि पर पड़ता है, सूर्य पर नहीं। इसी प्रकार माया ब्रह्म का आवरण नहीं करती है, अपितु ब्रह्म पर उस आवरण की प्रतीति मात्र होता है। माया स्वयं मिथ्या है, अतः उसके द्वारा ब्रह्म का तिरोधान भी मिथ्या है। माया के द्वारा ब्रह्म का तिरोधान होने पर भी ब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता उसी प्रकार प्रभावित नहीं होती है, जिस प्रकार अन्धे के द्वारा न देखे जाने

पर भी सूर्य का अस्तित्त्व प्रभावित नहीं होता है।

स्वरूपानुपपत्ति - रामानुज के अनुसार माया का स्वरूप भी नहीं बताया जा सकता है। यदि माया का अस्तित्त्व है तो यहाँ जिज्ञासा होती है कि उस माया अथवा अविद्या का स्वरूप क्या है? अविद्या को भावात्मक भी नहीं कह सकते है क्योंकि तब ब्रह्म को अद्वैतसत्ता नहीं रह सकती है। अद्वैतवेदान्त में एकमात्र ब्रह्म को ही सत्य स्वीकार किया जाता है तथा उसके अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या है। किन्तु यदि अविद्या को सत् स्वीकार किया जाए तो वह भी ब्रह्म के समान नित्य हो जाएगी तथा उसका निराकरण नहीं किया जा सकेगा। अविद्या को असत् भी नहीं स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि तब उसकी शशश्रंग एवं वन्ध्यापुत्र की भाँति कभी भी प्रतीति नहीं होनी चाहिए। यदि वह असत् है तो सम्पूर्ण जगत् को किस प्रकार से ब्रह्म पर आरोपित कर सकती है? इस तर्क को स्वरूपानुपपत्ति भी कहते हैं क्योंकि यह माया के स्वरूप के विषय में है। माया का स्वरूप चिन्त्य है। यहाँ माया का स्वरूप न तो सत् है और ना ही असत् है। माया को जगत् का कारण कहा गया है। यदि यह माया जगत् का कारण है तो वह असत् नहीं हो सकती है। यदि हम जगत् को ही असत् स्वीकार कर लें और अज्ञान को उस असत् जगत् का कारण स्वीकार कर लें तो इस अज्ञान का भी कोई अन्य कारण स्वीकार करना पड़ेगा। इस प्रकार अनेक कारणों की श्रृंखला बनती जाएगी जिससे अनवस्था दोष को प्रसक्ति होगी अतः अज्ञान को असत् जगत् का कारण नहीं मानना चाहिए। अतः यह माया अथवा अविद्या न तो सत् और न ही असत् है। यदि हम ऐसा स्वीकार कर ले कि माया अथवा अविद्या स्वरूपतः ब्रह्म के द्वारा प्रकट की जा सकती है तो माया नित्य हो जाएगी, क्योंकि ब्रह् नित्य है। इसके अतिरिक्त जीव निरन्तर अविद्या का दर्शन करता रहेगा, जिसके फलस्वरूप वह कभी भी मुक्त नहीं हो सकेगा। अतः यदि माया को ब्रह्म के द्वारा अभिव्यक्त मान लें तो

मुक्ति ही असम्भव हो जाएगी। इसका खण्डन करते हुए अद्वैतवेदान्तियों का तर्क यह है, कि यदि अविद्या को ब्रह्म में ही निहित स्वीकार कर लें तो चूँकि अज्ञान मिथ्या है अतः अविद्या स्वरूपतः कही भी निवास नहीं कर सकती है। ऐसा स्वीकार करना ही भ्रमात्मक है।

अनिर्वचनीयानुपपत्ति - अद्वैतवेदान्त में अविद्या अथवा माया न तो सत् माना गया है और ना ही असत् माना गया है। इन दोनों से ही पृथक् इसे अनिर्वचनीय स्वीकार किया गया है। अद्वैतवेदान्त में अज्ञान को अनिर्वचनीय माना जाता है क्योंकि सभी पदार्थ या तो सत् होते हैं अथवा असत्। चूँकि अज्ञान की यह कुछ है इस रूप में प्रतीति होती है अतः इसे असत् नहीं कह सकते हैं और ब्रह्म के ही एकमात्र सत् होने से यह सत् भी नहीं है अतः इसे अनिर्वचनीय कहते हैं। रामानुजाचार्य के अनुसार इस संसार के सभी पदार्थ या तो सत् है अथवा असत् है अतः इन दोनों के अतिरिक्त अनिर्वचनीय की एक अलग कोटि स्वीकार करना विरोधात्मक प्रतीत होता है क्योंकि अनिर्वचनीय का ज्ञान असम्भव है अतः जिसका ज्ञान ही न हो उसकी सत्ता को कैस स्वीकार किया जा सकता है? अतः अनिर्वचनीयता का सिद्धान्त दोषयुक्त है। इसी तर्क के अनिर्वचनीयनुपपत्ति की संज्ञा देते हैं।

प्रमाणानुपपत्ति - यहाँ जिज्ञासा होती है कि इस अनिर्वचनीया माया अथवा अविद्या की सिद्धि में प्रमाण क्या हैं? चूँकि यह अज्ञान अनिर्वचनीय है अर्थात् सत् (भाव) अथवा असत् (अभाव) से विलक्षण है अतः प्रत्यक्ष प्रमाण से भी इसकी सिद्धि नहीं की जा सकती है, क्योंकि प्रत्यक्ष से केवल भाव अथवा अभाव की सिद्धि की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इसकी सिद्धि अनुमान प्रमाण से भी नहीं की जा सकती है क्योंकि अनुमान करने हेतु व्याप्तिज्ञान एवं लिङ्ग की भी आवश्यकता होती है। चूँकि यह अनिर्वचनीय है, अतः इसकी व्याप्ति भी नहीं बन सकती है। जहाँ पर साहचर्य अर्थात् व्याप्ति का अभाव होता है, वहाँ पर व्याप्य-व्यापकभाव भी नहीं बन सकता है। चूँकि शास्त्रों में माया को ईश्वर की शक्ति

स्वीकार किया जाता है अतः शब्दप्रमाण से भी इसे नहीं जाना जा सकता है। इस तर्क को ही प्रमाणानुपपत्ति कहते हैं। किन्तु अद्वैतवेदान्तों इसका खण्डन करते हुए कहते हैं, कि अविद्या कोई वस्तु नहीं है। वह भाव नहीं है, किन्तु भावरूप है। अतः यह प्रश्न करना कि अविद्या का ज्ञान किस प्रमम से होता है यह अनुचित है।

निवर्त्तकानुपपत्ति - रामानुजाचार्य के अनुसार ज्ञान से अविद्या अथवा माया का विनाश सम्भव नहीं है। यह कहकर उन्होंने शङ्कराचार्य के उस मत का खण्डन किया है, जिसके अनुसार जीव एवं ब्रह्म के ऐक्य कर ज्ञान होने से अज्ञान का नाश हो जाता है। अद्वैतवेदान्ती निर्विशेष ब्रह्मज्ञान का माया का निर्वत्तक मानते हैं। रामानुजाचार्य का तर्क यह है कि ब्रह्म जो निर्गुण एवं निर्विशेष है, उसका ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है, क्योंकि ज्ञान के लिए भेद हना अनिवार् है। ज्ञान सदा सविशेष वस्तु का ही होता है। अतः निर्विशेष ब्रह्मज्ञान के अभाव में अविद्या का निर्वतनभी असम्भव है। अद्वैतवेदान्ती इस सन्दर्भ में तर्क देते हैं कि जो ब्रह्म निर्गुण एवं निर्विशेष है, उसका ज्ञान कर सकना सम्भव नहीं है। चूँकि निर्गुण ब्रह्म स्वयं ज्योतिस्वरूप है अतः उसके ज्ञान हेतु किसी ज्ञाता की अपेक्षा नहीं है। केवल अज्ञान निराकरण से वह प्रकाशित हो जाता है।

निवृत्त्यनुपपत्ति - अविद्या को भावरूप कहा गया है अतः जो भावरूप होता है, उसका विनाश भी नहीं हो सकता है अद्वैतवेदान्त में मक्ष ब्रह्मज्ञान नहीं अपितु ब्रह्मभाव है। अर्थात् 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ही ब्रह्मभाव है। यही विशुद्ध ज्ञान एवं मोक्ष का कारण है। ब्रह्मभाव तभी होगा। जब जीव माया के बन्धन में न पड़ा हो। रामानुज के अनुसार माया तो भावात्मक ही है तथा ज्ञान के द्वारा किसी भी भाव पदार्थ का विनाश सम्भव नहीं है। जीव का बन्धन कर्मजन्य है तथा भावात्मक है। केवल ज्ञान से ही किसी भाव पदार्थ का विनाश सम्भव नहीं है। इसका विनाश ज्ञान, कर्म एवं भक्ति तीनों से हो सकता है।

रामानुज के अनुसार अज्ञान का विनाश केवल ईश्वर की भक्ति तथा आत्मा के यथार्थज्ञान से ही सम्भव है। ईश्वर जीव की भक्ति से ही प्रसन्न होकर उसे मोक्ष प्रदान करते हैं। शङ्कराचार्य के अनुयायियों के अनुसार हमें जो रस्सी में सर्प का भ्रम होता है, वह यथार्थ ज्ञान अर्थात् रस्सी का ज्ञान होने से नष्ट हो जाता है, अतः वे माया अथवा अज्ञान का भावरूप स्वीकार करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. 'मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः।' ऋग्वेद (1/11/7)

   'विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रतिरस्तु।।'

   ऋग्वेद (6/58/1(

   'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्त हरयः शता दश।।' ऋग्वेद (6/47/18)

   ' दृँहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृताऽसि।।' यजुर्वेद (11/69(
2. प. हरेकान्तमिश्र विरचित बृहद्धातुकुसुमाकर, पृ. 364
3. डा. चन्द्रप्रकाश सिंह विरचित वेद एवं विभिन्न सम्प्रदाय, पृ. 137
4. अतो माया शब्दो विचित्रार्थसर्गका राभिधायी। प्रकृतेश्च

   मायाशब्दाभिधानं विचित्रार्थसर्गकरत्वादेव।– श्रीभाष्य (1/1/1)
5. परमात्मन्येकीभूतात्यन्तसूक्ष्मचिदचिद्वस्तुशरीरादेकस्मादेवद्वितीयान्निरतिशयानन्दात् सर्वज्ञात् सर्वशक्तेः सत्यसंकल्पाद् ब्रह्मणो नामरूपविभागार्हस्थूलचिदचिद् वस्तुशरीरतया बहुभवनसंकल्पपूर्वको जगदाकारेण परिणामःश्रूयते। श्रीभाष्य (1/4/27(
6. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

   तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्यो अभिचाकशीति।।

   ऋग्वेद –)1/164/20(

   मुण्डकोपनिषद् (3/1/1)
7. रामानुजभाष्य गीता –)4/6)
8. अस्याः कार्यं भगवत्स्वरूपतिरोधानं स्वस्वरूपभोग्यत्व बुद्धिः च, अतो भगवन्मायया मोहितं सर्वं जगद् भगवन्तम् अनवधिकातिशयानन्दस्वरूपं न अभिजानाति। (रामानुजभाष्य गीता – 7/14)